॥ आत्म गुंजन ॥

मानव ! तुझे नहीं याद क्या ? तू ब्रह्म का ही अंश है।
कुल गोत्र तेरा ब्रह्म है, सद्ब्रह्म तेरा वंश है॥
चैतन्य है तू अज अमल है, सहज ही सुख राशि है।
जन्मे नहीं,मरता नहीं, कुटस्थ है अविनाशी है ॥१॥

निर्दोष है निस्संग है बेरुप है बिनु रंग है।
तीनों शरीरों से रहित, साक्षी सदा बिनु अंग है॥
सुख शांति का भण्डार है, आत्मा परम आनन्द है।
क्यों भूलता है आपको ? तुझ में न कोई द्वन्द्व है ॥२॥

क्यों दीन है तू हो रहा ? क्यों हो रहा मन खिन्न है।
क्यो हो रहा भयभीत, तू तो एक तत्व अभिन्न है॥
कारण नहीं है शोक का, तू शुद्ध बुद्ध अजन्य है।
क्या काम है अब मोह का तू एक आत्म अनन्य है ॥३॥

तू रो रहा है किसलिये ?आँसु बहाना छोड़ दे।
चिन्ता चिता में मत जले, मन का जलाना छोड़ दे॥
आलस्य में पड़ना तुझे, प्यारे ! नहीं है सोहता।
अज्ञान है अच्छा नहीं, क्यों व्यर्थ है तू मोहता ॥४॥

तू आप अपनी याद कर, फिर आत्म को तू प्राप्त हो।
ना जन्म ले मर भी नहीं, मत ताप से संतृप्त हो॥
जो आत्म सो परमात्म है, तू आत्म में संतृप्त हो।
यह मुख्य तेरा काम है, मत देह में संतृप्त हो ॥५॥

तू अज अजर है अमर है, परिणाम तुझमें है नहीं।
सच्चित् तथा आनन्दधन, आता न जाता है कहीं॥
प्रज्ञान शाश्वत मुक्त तुझमें रुप है नहीं नाम है।
कूटस्थ भूमा नित्य पूरण, काम है निष्काम है ॥६॥

माया रची तू आप ही है, आप ही तू फँस गया।
कैसा महा आश्चर्य है ? तू भूल अपने को गया॥
संसार–सागर डूब कर, गोते पड़ा है खा रहा।
अज्ञान से भव सिन्धु में, बहता चला है जा रहा ॥७॥

है सर्व व्यापक आत्म तू, सब विश्व में है भर रहा।
छोटा अविद्या से बना है, जन्म ले ले मर रहा ॥
माने स्वयं को देह तु, ममता अहंता कर रहा ।
चिंता करे है दूसरों की, व्यर्थ ही है जर रहा ॥८॥

कर्ता बना भोक्ता बना, ज्ञाता प्रमाता बन गया।
दलदल शुभाशुभ कर्म में, निस्संग भी तू सन गया॥
करता किसीसे राग है, माने किसीसे द्वेष है।
इच्छा करे मारा फिरे तू, देश और विदेश है ॥९॥

हैं डाल लीन्हीं पैर में, जंजीर लाखों कामना।
रोवे तथा चिल्लाय है,जब कष्ट का हो सामना॥
धन चाहता सुत दार नाना, भोग है तू चाहता।
अन्धे कुँवे में कर्म के गिर कष्ट अनेकों पावता ॥१०॥

माया नटी के जाल में, फँस हो गया कंगाल तू।
दर–दर फिरे है भटकता, जग सेठ मालामाल तू॥
तू कर्म बेड़ी में बँधा, जन्मे पुनः मर जाय है।
ऊँचा चढ़े है स्वर्ग में, फिर नरक में गिर जाय है ॥११॥

मजबूत अपने जाल में, माया तुझे है बाँधती।
दे जन्म तुझको मारती, गर्भाग्नि में फिर राँधती॥
चिंता क्षुधा भय शोकमय, रातें तुझे दिखलावती।
भव के भयानक मार्ग में,बहु भाँति है भटकावती ॥१२॥

संसार दल दल माँहि है, माया तुझे धसकावती।
तू जानता ऊँचा चढुँ, नीचे लिये है जावती॥
ज्ञानाग्नि होली बाल के, माया जली को दे जला।
ज्ञानाग्नि से जाले बिना,टलनी नहीं है यहाँ बला ॥१३॥

जब चित्त पूर्ण निरुद्ध हो, तब तु समाधी पायगा।
जब तक न होगा चित्त थिर, नहीं मोह तब तक जायगा॥
जब मोह होगा दुर तब, तू आत्म को लख पायगा।
जब होय दर्शन आत्म का, कृतकृत्य तू हो जायेगा ॥१४॥

मन कर्म वाणी से तथा, जो शुद्ध पावन होय है।
अधिकारी सो ही योग का है ज्ञान पाता सोय है।
हो तू सदाचारी सदा, मन इन्द्रियों को जीत रे।
ना स्वप्न में भी दूसरों की, तू बुराई चीत रे ॥१५॥

क्या क्या करुँ, कैसे करुँ, यह जानना यदि इष्ट है।
तो शास्त्र संत बतायेंगे, जो इष्ट या कि अनिष्ट है॥
श्रद्धा सहित जा शरण उनकी, त्याग निज अभिमान दे।
निर्दम्भ हो, निष्कपट हो, श्रुति संत को सन्मान दे ॥१६॥

मैं और मेरा त्याग दे, मत लेश भी अभिमान कर।
सबका नियंता मानकर, विश्वेश का ही ध्यान कर॥
मत मान कर्ता आपको, कर्तार भगवत जान रे।
तो स्वर्ग द्वारा जाय खुल, तेरे लिये सच मान रे ॥१७॥

निश दिन निरन्तर बरसती, सुख मेघ की शीतल झड़ी।
भीतर न तेरे जा सके, है आड़ ममता की पड़ी॥
ममता अहंता त्याग दे, वर्षा सुधा की आयगी।
ईर्षा–जलन बुझ जायेगी, चिंता तपन मीट जायेगी ॥१८॥

ममता अहंता वायु का, झोंका न जब तक जायगा।
विज्ञान दीपक चित्त में, तेरे नहीं जुड़ पायगा॥
श्रुति संत का उपदेश तब तक, बुद्धि में नहीं आयेगा।
नहीं शान्ति होगी लेश भी, नहीं तत्त्व समझा जायेगा ॥१९॥

सिद्धान्त सच्चा है यही, जगदीश ही कर्तार है।
सबका नियन्ता है वही, ब्रह्माण्ड का आधार है।
विश्वेश की मर्जी बिना, नहीं कार्य कोई चल सके।
ना सूर्य ही है तप सके, नहीं चन्द्र ही है हल सके ॥२०॥

कुछ भी नहीं मैं कर सकूँ, करता सभी विश्वेश है।
ऎसी समझ उत्तम महा, सच्चा यही आदेश है॥
पुरा करुँगा कार्य यह, वह कार्य मैंने है करा।
पुरा यही अज्ञान है अभिमान यह ही है खरा ॥२१॥

मैं क्षुद्र है, मेरा बुरा, मुझ भी मृषा है त्याग रे।
अपना पराया कुछ नहीं, अभिमान से हट भाग रे॥
यह मार्ग है कल्याण का, हो जाय तू निष्पाप रे।
देहादि मैं मत मान रे, सोहं किया कर जाप रे ॥२२॥

यदि शांति अविचल चाहता यदि इष्ट निज कल्याण है।
संशय रहित सच जान तेरा,शत्रु यह अभिमान है॥
मत देह में अभिमान कर, कुल आदि का तज मान दे।
नहीं देह मैं, नहीं देह मेरा, नित्य इस पर ध्यान दे ॥२३॥

है दर्प काला सर्प सिर, उसका कुचल दे मार दे।
ले जीत रिपु अभिमान को, निज देह में से टार दे॥
जो श्रेष्ठ माने आपको, सो मूढ़ चोटें खाय है।
तू श्रेष्ठ सबसे है नहीं, क्यों श्रेष्ठता दिखलाय है ॥२४॥

मत तू प्रतिष्ठा चाह रे, मत तू प्रशंसा चाह रे।
सबको प्रतिष्ठा दे, प्रतिष्ठित आप तू हो जाय रे॥
वाणी तथा आचार में, माधुर्यता दिखला सदा।
विद्या विनय से युक्त होकर,सौम्यता सिखला सदा ॥२५॥

कर प्रीति शिष्टाचार में, वाणी मधुर उच्चार रे।
मन बुद्धि को पावन बना, संसार से हो पार रे॥
प्यारा सभी को हो सदा, कर तू सभी को प्यार रे।
निःस्वार्थ हो निष्काम हो, जग जान तू निःसार रे ॥२६॥

छोटे बड़े निर्धन धनी, कर प्यार सबको एक सम।
बट्टे सभी शिल एक के, कोई नहीं है वेश कम॥
मत तू किसी से कर घृणा, सबकी भलाई चाह रे।
जब मार्ग में काँटे धरे, बो फुल उसकी राह रे ॥२७॥

हंसा किसीकी कर नहीं, जो बन सके उपकार कर।
विश्वेश को यदि चाहता है, विश्वभर को प्यार कर॥
जो मृत्यु भी आ जाय तो, उसकी न तू परवाह कर।
मत दूसरे को भय दिखा, रह आप भी सबसे निडर ॥२८॥

निःस्वार्थ सेवी हो सदा, मन मलिन होता स्वार्थ से।
जब तक रहेगा मन मलिन, नहीं भेंट हो परमार्थ से॥
जे शुद्ध मन नर होय हैं, वे ईश दर्शन पायँ हैं।
मन के मलिन नहीं स्वप्न में भी, ईश सन्मुख जायँ है ॥२९॥

पीड़ा न दे तू हाथ से, कड़वा वचन मत बोल रे।
संकल्प मत कर अशुभ तू, सच बोल पूरा तोल रे॥
ऐसी किया कर भावना, नहीं दूर तुझसे लेश है।
रहता सदा तेरे निकट, पावन परम विश्वेश है ॥३०॥

तू शुद्ध से भी शुद्ध अति, जगदीश का नित ध्यान धर।
हो आप भी जा शुद्ध तू, मैला न अपना चित्त कर॥
हो चित्त तेरा खिन्न, ऐसा शब्द तू मत सुन कभी।
मत देख ऐसा दृश्य ही, मत सोच ऐसी बात भी ॥३१॥

जो नारी नर भगवद्विमुख, संसार में आसक्त हैं।
विपरीत करते आचरण, निज स्वार्थ में अनुरक्त हैं॥
कंजूस कामी क्रुर जे, परदार-रत परधन हरे।
मत पास उनके जा कभी, जे अन्य की निन्दा करे ॥३२॥

रह दूर हर दम पाप से, निष्पाप हो निष्काम हो ।
निर्दोष पातक से रहित, निःसंग आत्माराम हो॥
भगवत् परम निष्पाप हैं, तु पाप अपने धोय रे।
भगवत् तुरत ही दर्श दें, अघहीन यदि तू होय रे ॥३३॥

जे लोक की परलोक की, नहीं कामनायें त्यागते।
संसार के हैं श्वान जे, संसार में अनुरागते॥
कंचन जिन्हें प्यारा लगे, जे मूढ किंकर काम के।
नहीं शांति वे पाते कभी, नहीं भक्त होते राम के ॥३४॥

रह लोभ से अति दूर ही, जा दर्प के तू पास ना।
बच काम से अरु क्रोध से, कर गर्व से सहवास ना॥
आलस्य मत कर भूल भी, ईर्षा न कर मत्सर न कर ।
हैं आठ ये वैरी प्रबल, इन वैरियों से भाग डर ॥३५॥

विश्वाश से कर मित्रता, श्रद्धा सहेली ले बना ।
प्रज्ञा तितिक्षा को बढ़ा, प्रिय न्याय का कर त्याग ना॥
गम्भीरता शुभ भावना, अरु धैर्य का सम्मान कर ।
हैं आठ सच्चे मित्र ये, कल्याण कर भव–भीर हर ॥३६॥

शिष्टाचरण की ले शरण, आचार दुर्जन त्याग दे ।
मन इन्द्रियाँ स्वाधिन कर, तज द्वेष दे तज राग दे॥
सुख शांति का यह मार्ग है, श्रुति संत कहते हैं सभी।
दुर्जन दुराचारी नहीं, पाते अमर पद हैं कभी ॥३७॥

अभ्यास ऐसा कर सदा, पावन परम हो जाय रे।
कर सत्य पालन नित्य ही, नहीं झुठ मन में आय रे॥
झुठे सदा रहते फँसे, माया नटीके जाल में।
तू सत्य भूमा प्राप्त कर, मत काल के आ गाल में ॥३८॥

है सत्य भूमा एक ही, मिथ्या सभी संसार रे।
तल्लीन भूमा माँही हो, कर तात ! निज उद्धार रे॥
कर निज मुख्य कर्तव्य तू, स्वराज्य भूमा प्राप्त कर।
मत यक्ष राक्षस पूजने में, दिव्य देह समाप्त कर ॥३९॥

सच जान जे हैं आलसी, निज हानि करते हैं सदा।
करते उन्हों का संग जे, वे भी दुःखी हों सर्वदा॥
आलस्य को दे त्याग तू, मन कर्म शिष्टाचार कर।
अभ्यास कर वैराग्य कर, निज आत्म का उद्धार कर ॥४०॥

हो उद्यमी संतुष्ट तू, गम्भीर धीर उदार हो।
धारण क्षमा उत्साह कर, शुभ गुणन का भंडार हो॥
कर कार्य सर्व विचार से, समझे बिना मत कार्य कर।
शम दम यमादिक पाल तू, तप कर तथा स्वाध्याय कर ॥४१॥

जो धैर्य नही है धारते, भय देख घबरा जाय हैं।
सब कार्य उनका व्यर्थ है, नहीं सिद्धि वे नर पाय हैं॥
चिंता कभी मिटती नहीं, नहीं दुःख उनका जाय है।
पाते नहीं सुख लेश भी, नहीं शांति मुख दिखलाय है ॥४२॥

गर्मी न थोड़ी सह सके, सर्दी सही नहीं जाय है।
नहीं सह सके हैं शब्द इक,चढ़ क्रोध उन पर आय है॥
जिसमें नहीं होती क्षमा, नहीं शांति सो नर पाय है।
शुचि शांत मन संतुष्ट हो,सो नर सुखी हो जाय है ॥४३॥

मर्जी करेगा दूसरों की, सुख नहीं तू पायेगा।
नहीं चित्त होगा थिर कभी, विक्षिप्त तू हो जायगा॥
संसार तेरा घर नहीं, दो चार दिन रहना यहाँ।
कर याद अपने राज्य की, स्वराज्य निष्कंटक जहाँ ॥४४॥

सम्बंध लाखों व्यक्तियों से, यदि करेगा तू सदा।
तो कार्य लाखों भातिँ के, करता रहेगा सर्वदा ॥
कैसे भला फिर चित्त तेरा, शांत निर्मल होयगा।
लाखों जिसे बिच्छु डसें कैसे बता सो सोयगा ॥४५॥

तू न्यायकारी हो सदा, समबुद्धि निश्चल चित्त हो।
चिंता किसिकी मत करे, निर्द्वन्द्व हो मन शांत हो॥
प्रारब्ध पर दे छोड़ सब, जग ईश में अनुरक्त हो।
चिंतन उसीका कर सदा, मत जगत में आसक्त ॥४६॥

कर्ता वही धरता वही, सब में वही सब है वही।
सर्वत्र उसको देख तू, उपदेश सच्चा है यही॥
अपना भला ज्यों चाहता, त्यों चाह तू सबका भला।
संतुष्ट पूरा शांत हो, चिंता बुरी काली बला ॥४७॥

हे पुत्र ! थोड़ा वेग भी, यदि दुःख का न उठा सके।
तो शांति अविचल तत्व की, कैसे भला तू पा सके॥
हो मृत्यु का जब सामना, तब दुःख होवेगा घना।
कैसे सहेगा दुःख सो, यदि धैर्य तुझमें होय ना ॥४८॥

कर तू तितिक्षा रात दिन, जो दुःख आवे झेल ले।
वह ही अमर पद पाय है जो कष्ट से नहीं है हले ॥
है दुःख ही सन्मित्र, सब कुछ दुःख ही सिखलाय है।
बल बुद्धि देता दुःख, पण्डित धीर वीर बनाय है ॥४९॥

बल बुद्धि तेरी की परीक्षा, दुःख आकर लेय है।
जो पाप पहिले जन्म के हैं, दूर सब कर देय है॥
निर्दोष तुझको देय कर, पावन बनाता है तुझे।
क्या सत्य और असत्य क्या यह भी सिखाता है तुझे ॥५०॥

तू कष्ट से घबरा न जा रे, कष्ट ही सुख मान रे।
जो कार्य नहीं हो सिद्ध तो भी, लाभ उसमें जान रे॥
बहुबार पटके खाय है, तब मल्ल मल्लन पीटता।
लड़ता रहे जो धैर्य से, माया–किला सो जीतता ॥५१॥

यदि कष्ट से घबराय के, तू युद्ध से हट जायेगा।
तो तू जहाँ पर जायगा, बहु भाँति कष्ट उठायेगा॥
जन्मे कहीं भी जाय के, नहीं मुक्त होगा युद्ध से।
रह युद्ध करता धैर्य से, जब तक मिले नहीं शुद्ध से ॥५२॥

इसमें नहीं सन्देह, जीवन झंझटों से युक्त है।
वह ही यहाँ जय पाय है, जो धैर्य से संयुक्त है॥
समता क्षमा से युक्त ही, मन शांत रहता है यहाँ।
जो कष्ट सह सकता नहीं, सुख शांति उसको है कहाँ ॥५३॥

जो जो करे तू कार्य कर, सब शांत होकर धैर्य से।
उत्साह से अनुराग से, मन शुद्ध से बल वीर्य से॥
जो कार्य हो जिस काल का, कर तू समय पर ही उसे।
दे मत बिगड़ने कार्य कोई ,मुर्खता आलस्य से ॥५४॥

दे ध्यान पूरा कार्य में, मत दूसरे में ध्यान दे।
कर तू नियम से कार्य सब, खाली समय मत जान दे॥
सब धर्म अपने पूर्ण कर, छोटे बड़े से या बड़े।
मत सत्य से तू डिग कभी, आपत्ति कैसी ही पड़े ॥५५॥

निःस्वार्थ होकर कार्य कर, बदला कभी मत चाह रे।
अभिमान मत कर लेश भी, मत कष्ट की परवाह रे॥
क्या खान हो क्या पान हो क्या पुण्य हो क्या दान हो।
सब कार्य भगवत हेतु हों क्या होय जप क्या ध्यान हो॥५६॥

कुछ भी न कर अपने लिये, कर कार्य सब शिव के लिये।
पूजा करें या पाठ कर, सब प्रेम भगवत् के लिये॥
सब कुछ उसीको सौंप दे, निशिदिन उसीको प्यार कर।
सेवा उसीकी कर सदा, दूजा न कुछ व्यापार कर ॥५७॥

सदग्रंथ पढ़ तू भक्ति शिक्षक, ज्ञानवर्धक शास्त्र पढ़।
विद्या सभी पढ़ श्रेयकारिणि, मोक्षदायक शास्त्र पढ़॥
आदर सहित अनुराग से, सदग्रंथ का ही पाठ कर।
दे चित्त शिष्टाचार में, दुष्टाचरण पर लात धर ॥५८॥

पढ़ ग्रंथ नित्य विवेक के, मन स्वच्छ तेरा होयगा।
वैराग्य के पढ़ ग्रंथ तू, बहुजन्म के अघ धोयगा॥
पढ़ ग्रंथ सादर भक्ति से, आह्लाद मन भर जायेगा।
श्रद्धा सहित स्वध्याय कर, संसार से तर जायेगा ॥५९॥

जो जो पढ़े सब याद रख, दिनरात नित्य विचार कर।
श्रुतियाँ भले स्मृतियाँ, पुराणादिन सभी निर्धार कर॥
अभ्यास से सत् शास्त्र के, जब बुद्धि तीव्र बनायगा।
तो तीव्र प्रज्ञा की मदद से, तत्व तू लख पायगा॥६०॥

जे नर दुराचारी तथा, निज स्वार्थ में रत होय है।
गिर कूप में वे मोह के, सुख शांति से नहीं सोय हैं॥
भटका करें ब्रह्माण्ड में, बहु भाँति कष्ट उठावते।
मतिमन्द श्रुति के अर्थ को, सम्यक् समझ नहीं पावते ॥६१॥

मत मोह में तू फँस कभी, निर्मुक्त हो संमोह से।
कर बुद्धि निर्मल स्वच्छ, रह तू दूर दुःखकर द्रोह से ॥
जब चित्त होगा स्वच्छ, तबही शांति अक्षय पायगा।
जो जो पढ़ेगा शास्त्र तू, सम्यक् समझ में आयगा ॥६२॥

गुरु वाक्य का कर अनुसरण, विश्वास श्रद्धायुक्त हो।
बतलाय है जो शास्त्र कर आचार संशय मुक्त हो॥
जो जो बताते शास्त्र गुरु, उपदेश सर्व यथार्थ है।
संशय न उसमें कर कभी, यदि चाहता परमार्थ है ॥६३॥

यह ज्ञान ही केवल तुझे, सुख मुक्ति का दातार है।
ना ज्ञान बिन सौ कल्प में भी छुटता संसार है॥
सब वृत्तियों को रोककर, तू चित्त को एकाग्र कर।
कर शांत सारी वृत्तियाँ, निज आत्म का नित ध्यान कर ॥६४॥

॥ ॐ ॥